

# ‘जैनयोग में अनुप्रेक्षा’

समणी नियोजिका मंगलप्रज्ञा...✍

यह संसार शब्द एवं अर्थमय है। शब्द अर्थ के बोधक होते हैं। अर्थ व्यंग्य एवं शब्द व्यञ्जक होता है। साधना के क्षेत्र में शब्द एवं अर्थ दोनों का ही उपयोग होता है। साधक शब्द के माध्यम से अर्थ तक पहुँचता है तथा अंततः अर्थ के साथ उसका तादात्म्य स्थापित होता है। अर्थ से तादात्म्य स्थापित होने से ध्येय, ध्यान एवं ध्याता का वैविध्य समाप्त होकर उनमें एकत्व हो जाता है। उस एकत्व की अनुभूति में योग परिपूर्णता को प्राप्त होता है। इस एकत्व की अवस्था में चित्रवृत्तियों का सर्वथा निरोध हो जाता है।<sup>१</sup> पातञ्जल योगदर्शन के अनुसार यह निरोध ही योग है। पूर्ण समाधि की अवस्था है।

जैन दर्शन में योग शब्द का अर्थ है - प्रवृत्ति। मन, वचन एवं काया की प्रवृत्ति को योग कहा गया है।<sup>२</sup> जैनतत्त्वमीमांसा में शुभयोग, अशुभयोग आदि शब्द प्रचलित हैं किन्तु प्रस्तुत प्रसंग में जैनयोग शब्द का प्रयोग इस प्रवृत्त्यात्मक योग के लिए नहीं हुआ है। यहाँ योग शब्द जैनसाधनापद्धति के अर्थ में प्रयुक्त है। आगम-उत्तरवर्ती जैन-साहित्य में योग का तत्त्वमीमांसीय अर्थ प्रवृत्त्यात्मकता तो स्वीकृत रहा ही साथ में साधना के अर्थ में भी इसका प्रयोग होने लगा। जैन आचार्यों ने साधनापरक ग्रंथों के नाम योगशास्त्र आदि रखे एवं योग का साधनात्मक नाम सर्वमान्य हो गया।

आत्मा का सिद्धान्त स्थिर हुआ तब आत्म-विकास के साधनों का अन्वेषण किया गया। आत्मविकास के उन साधनों को एक शब्द में मोक्षमार्ग या योग कहा गया है। वस्तुतः जैन साधनापद्धति का नाम मोक्षमार्ग है। आचार्य हरिभद्र ने कहा - “मोक्खेण जोयणाओ जोगो सच्चो वि धम्मवावारो”<sup>३</sup> वह सारा धार्मिक व्यापार योग है, जो व्यक्ति को मुक्ति से जोड़ता है। योग या मोक्षमार्ग केवल पारलौकिक ही नहीं है किन्तु वर्तमान जीवन में भी जितनी शांति, जितना चैतन्य स्फुरित होता है, वह सब मोक्ष है।

शांति एवं चैतन्य की स्फुरणा के लिए जैन-साहित्य में अनेक उपायों का निर्देश है। उन उपायों में एक महत्त्वपूर्ण उपाय है - अनुप्रेक्षा। जैन-आगम, तत्त्वमीमांसीय एवं साधनापरक

साहित्य में अनुप्रेक्षा/भावना के सिद्धान्त का महत्त्वपूर्ण एवं विशद विवरण प्राप्त है। मोक्षमार्ग में वैराग्य की अभिवृद्धि के लिए बारह अनुप्रेक्षाओं का वर्णन प्रसिद्ध है। इन्हें बारह वैराग्य-भावना भी कहते हैं। इनके अनुचितन से व्यक्ति भोगों से निर्विण्ण होकर साम्य-भाव में स्थित हो सकता है।

ध्यान की परिसम्पन्नता के पश्चात् मन की मूर्च्छा को तोड़ने वाले, विषयों का अनुचितन करना अनुप्रेक्षा है।<sup>४</sup> अनु एवं प्र उपसर्ग सहित ईक्ष् धातु के योग से अनुप्रेक्षा शब्द निष्पन्न हुआ है, जिसका शाब्दिक अर्थ है - पुनः पुनः चिन्तन करना। विचार करना। प्राकृत में अनुप्रेक्षा के लिए अणुपेहा, अणुपेहा, अणुवेक्खा, अणुवेहा, अणुपेक्खा आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। इन सबका संस्कृत रूपान्तरण अनुप्रेक्षा है। आचार्य पूज्यपाद ने शरीर आदि के स्वभाव के अनुचितन को अनुप्रेक्षा कहा है।<sup>५</sup> स्वामी कुमार के अभिमतानुसार सुतत्त्व का अनुचितन अनुप्रेक्षा है।<sup>६</sup> अनित्य, अशरण आदि स्वरूप का बार-बार चिन्तन-स्मरण करना अनुप्रेक्षा है।<sup>७</sup> अनुप्रेक्षा तत्त्व चिंतनात्मक है। ध्यान में जो अनुभव किया है, उसके परिणामों पर विचार करना अनुप्रेक्षा है।

अध्यात्म के क्षेत्र में अनुप्रेक्षा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अनुप्रेक्षा के विविध प्रयोगों से व्यक्ति की बहिर्मुखी चेतना अंतर्मुखी बन जाती है। चेतना की अंतर्मुखता ही अध्यात्म है। जीवन का अभीष्ट लक्ष्य है। अनुप्रेक्षा के महत्त्व को प्रकट करते हुए आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है कि - जितने भी भूतकाल में श्रेष्ठ पुरुष सिद्ध हुए हैं एवं भविष्य में होंगे, वह भावना का ही महत्त्व है।<sup>८</sup> आचार्य पद्मनन्दि बारह अनुप्रेक्षा के अनुचितन की प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि बारह भावना महान् पुरुषों के द्वारा सदा ही अनुप्रेक्षणीय है। उनकी अनुचितना कर्मक्षय का कारण है।<sup>९</sup> शुभचन्द्राचार्य कहते हैं कि भावना के अभ्यास से कषायाग्नि शांत, राग नष्ट एवं अंधकार विलीन हो जाता है तथा पुरुष के हृदय में ज्ञान रूपी दीपक उद्भासित हो जाता है।<sup>१०</sup> तत्त्वार्थसूत्र, कार्तिकेयानुप्रेक्षा आदि ग्रंथों में अनुप्रेक्षा को संवर धर्म का विशेष

हेतु माना गया है।<sup>१९</sup>

आगम में एक साथ बारह अनुप्रेक्षा का उल्लेख नहीं है किन्तु उत्तरपूर्वी साहित्य में उनका एक साथ वर्णन है। वारस-अणुवेक्खा, कार्तिकेयानुप्रेक्षा, शान्त-सुधारस-भावना आदि ग्रंथों का निर्माण तो मुख्य रूप से इन अनुप्रेक्षाओं के लिए ही हुआ है। तत्त्वार्थसूत्र आदि में भी इनका पर्याप्त विवेचन उपलब्ध है। शान्त-सुधारस आदि कुछ ग्रंथों में इन बारह भावनाओं के साथ मैत्री आदि चार भावनाओं को जोड़कर सोलह भावनाओं का विवेचन किया गया है। जैन-साहित्य में बारह भावनाओं का उल्लेख बहुलता से प्राप्त है। अनित्य आदि अनुप्रेक्षा के पृथक्-पृथक् प्रयोजन का भी वहाँ पर उल्लेख है। आसक्ति-विलय के लिए अनित्य अनुप्रेक्षा, धर्म-निष्ठा के विकास के लिए अशरण अनुप्रेक्षा, संसार से उद्वेग-प्राप्ति हेतु संसार-भावना एवं स्वजन-मोह-त्याग के लिए एकत्व अनुप्रेक्षा का अभ्यास किया जाता है।<sup>२०</sup> इसी प्रकार अन्य अनुप्रेक्षाओं का विशिष्ट प्रयोजन है।

उत्तराध्ययन-सूत्र में अनुप्रेक्षा के परिणामों का बहुत सुंदर वर्णन उपलब्ध है। अनुप्रेक्षा से जीव क्या प्राप्त करता है, गौतम के इस प्रश्न के समाधान में भगवान महावीर ने अनुप्रेक्षा के लाभ बताए हैं। वहाँ पर अनुप्रेक्षा के छह विशिष्ट परिणामों का उल्लेख है -

- (१) कर्म के गाढ़ बंधन का शिथिलीकरण।
- (२) दीर्घकालीन कर्मस्थिति का अल्पीकरण।
- (३) तीव्र कर्मविपाक का मंदीकरण।
- (४) प्रदेश-परिमाण का अल्पीकरण।
- (५) असाता वेदनीय कर्म के उपचय का अभाव।
- (६) संसार का अल्पीकरण।<sup>२१</sup>

अनुप्रेक्षा चिन्तनात्मक होने से ज्ञानात्मक है। ध्यानात्मक नहीं है। अनित्य आदि विषयों के चिन्तन में जब चित्त लगा रहता है, तब वह अनुप्रेक्षा और जब चित्त उन विषयों में एकाग्र हो जाता है, तब वह धर्म्यध्यान कहलाता है।<sup>२२</sup> ध्यानशतक में स्थिर अध्यवसाय को ध्यान एवं अस्थिर अध्यवसाय को चित्त कहा गया है। और वह चित्त भावना, अनुप्रेक्षा अथवा चिन्तनात्मक रूप होता है।<sup>२३</sup>

स्वाध्याय के पाँच भेदों में अनुप्रेक्षा भी एक है।<sup>२४</sup> सूत्र के अर्थ की विस्मृति न हो इसलिए अर्थ का बार-बार चिन्तन किया जाता है। अर्थ का बार-बार चिन्तन ही अनुप्रेक्षा है।<sup>२५</sup> अनुप्रेक्षा में मानसिक परावर्तन होता है, वाचिक नहीं होता। धर्म्य-ध्यान एवं शुक्लध्यान की भी चार-चार अनुप्रेक्षा बताई गई है।<sup>२६</sup> स्वाध्यायगत अनुप्रेक्षा, ध्यानगत अनुप्रेक्षा एवं बारह अनुप्रेक्षा में अनुप्रेक्षा शब्द का प्रयोग हुआ है, किन्तु संदर्भ के अनुकूल उनके तात्पर्यार्थ में कथंचित् भिन्नता है।

प्राचीन ग्रंथों में अनुप्रेक्षा का तत्त्व-चिन्तनात्मक रूप उपलब्ध है। यद्यपि धर्म्य एवं शुक्ल ध्यान की अनुप्रेक्षाओं का भी उल्लेख है किन्तु उनका भी चिन्तनात्मक रूप ही उपलब्ध है। प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों में अनुप्रेक्षा के चिन्तनात्मक स्वरूप के साथ ही उसके ध्येय के साथ तादात्म्य के रूप को भी स्वीकार किया गया है। अनुप्रेक्षा का प्रयोग सुज्ञाव-पद्धति का प्रयोग है। आधुनिक विज्ञान की भाषा में इसे सजेस्टोलॉजी कहा जा सकता है। स्वभाव-परिवर्तन का अनुप्रेक्षा अमोघ उपाय है। अनुप्रेक्षा के द्वारा जटिलतम आदतों को बदला जा सकता है। प्रेक्षा-ध्यान में स्वभाव-परिवर्तन के सिद्धान्त के आधार पर अनेक अनुप्रेक्षाओं का निर्माण किया गया है एवं उनके प्रयोगों से वाञ्छित परिणाम भी प्राप्त हुए हैं।

स्वभाव-परिवर्तन के लिए प्रतिपक्ष भावना का प्रयोग बहुत लाभदायी है। प्रतिपक्ष की अनुप्रेक्षा से स्वभाव, व्यवहार और आचरण को बदला जा सकता है। मोह कर्म के विपाक पर प्रतिपक्ष भावना का निश्चित प्रभाव होता है। दशवैकालिक में इसका स्पष्ट निर्देश प्राप्त है। उपशम की भावना से क्रोध मृदुता से अभिमान, ऋजुता से माया और संतोष से लोभ के भावों को बदला जा सकता है।<sup>२७</sup> आचारांगसूत्र में भी ऐसे निर्देश प्राप्त हैं। जो पुरुष अलोभ से लोभ को पराजित कर देता है, वह प्राप्त कामों में निमग्न नहीं होता।<sup>२८</sup>

अध्यात्म के क्षेत्र में प्रतिपक्ष भावना का सिद्धान्त अनुभव की भूमिका में सम्मत है। जैन-मनोविज्ञान के अनुसार मौलिक मनोवृत्तियाँ चार हैं-क्रोध, मान, माया और लोभ। यह मोहनीय कर्म की औदयिक अवस्था है। प्रत्येक प्राणी में जैसे मोहनीय कर्म का औदयिक भाव होता है वैसे ही क्षायोपशमिक भाव भी होता है। प्रतिपक्ष की भावना के द्वारा औदयिक भावों को निष्क्रिय पर क्षायोपशमिक भाव को सक्रिय कर दिया जाता है। महर्षि

पतञ्जलि ने भी प्रतिपक्ष भावना के सिद्धान्त को मान्य किया है। उनका अभिमत है कि अविद्या आदि क्लेश प्रतिपक्ष भावना से उपहत होकर तनु हो जाते हैं<sup>२२</sup>। क्लेश प्रतिप्रसव (प्रतिपक्ष) के द्वारा हेय है<sup>२३</sup>। अनुप्रेक्षा के प्रयोग क्लेशों को तनु करते हैं।

अनुप्रेक्षा संकल्पशक्ति प्रयोग है। अनुप्रेक्षा के प्रयोग से संकल्पशक्ति को बढ़ाया जा सकता है। व्यक्ति जैसा संकल्प करता है, जिन भावों में आविष्ट होता है तदनु रूप उसका परिणाम होना लगता है। जं जं भावं आविसइ तंतं भावं परिणमइ<sup>२४</sup>। संकल्पशक्ति के द्वारा मानसिक चित्र का निर्माण हो गया तो उस घटना को घटित होना ही होगा। संकल्प्य वस्तु के साथ तादात्म्य हो जाने से पानी भी अमृतवत् विषाषाहारक बन जाता है। आचार्य सिद्धसेन ने कल्याणमंदिर में इस तथ्य को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किया है<sup>२५</sup>। तत्त्वानुशासन में कहा गया है कि व्यक्ति जिस वस्तु का अनुचिंतन करता है वह तत् सदृश गुणों को प्राप्त कर लेता है। परमात्मस्वरूप को ध्यानाविष्ट करने से परमात्मा, गरुडरूप को ध्यानाविष्ट करने से गरुड एवं कामदेव के स्वरूप को ध्यानाविष्ट करने से कामदेव बन जाता है<sup>२६</sup>। पातञ्जल योग-दर्शन में भी यही निर्देश प्राप्त है। हस्तिबल में संयम करने पर हस्ति सदृश बल हो जाता है। गरुड एवं वायु आदि पर संयम करने पर ध्याता तत्सदृश बन जाता है<sup>२७</sup>।

अनुप्रेक्षा ध्यान की पृष्ठभूमि का निर्माण कर देती है। अनुप्रेक्षा का आलम्बन प्राप्त हो जाने पर ध्याता ध्यान में सतत् गतिशील बना रहता है। अनुप्रेक्षा भावना आत्म-सम्मोहन की प्रक्रिया है। अर्हम् की भावना करने वाले में अर्हत् होने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। ध्येय के साथ तन्मयता होने से ही तद्गुणता प्राप्त होती है। इसलिए आचारांग में कहा गया है कि साधक ध्येय के प्रति दृष्टि नियोजित करे, तन्मय बने, ध्येय को प्रमुख बनाये, उसकी स्मृति में उपस्थित रहे, उसमें दत्तचित्त रहे<sup>२८</sup>।

बौद्ध एवं पातञ्जल साधना पद्धति में भी भावनाओं का प्रयोग होता है। पातञ्जल योग सूत्र में अनित्य, अशरण आदि भावनाओं का तो उल्लेख प्राप्त नहीं है, किन्तु मैत्री, करुणा एवं मुदिता इनका उल्लेख किया है। उपेक्षा को इन्होंने भावना नहीं माना है, उनका अभिमत है कि पापियों में उपेक्षा करना भावना नहीं है अतः उसमें समाधि नहीं होती है।

बौद्ध-साहित्य में अनुपश्यना शब्द का प्रयोग हुआ है जो अनुप्रेक्षा के अर्थ को ही अभिव्यक्त करता है। अभिधम्मत्थ संगहो में अनित्यानुपश्यना, दुःखानुपश्यना, अनात्मानुपश्यना, अनिमित्तानुपश्यना आदि का उल्लेख प्राप्त है<sup>३०</sup>। विशुद्धिमग्न में ध्यान के विषयों (कर्म-स्थान) के उल्लेख के समय दस प्रकार की अनुस्मृतियों एवं चार ब्रह्मविहार का वर्णन किया है<sup>३१</sup>। उनसे अनुप्रेक्षा की आंशिक तुलना हो सकता है। मरण-स्मृति कर्मस्थान में शव को देखकर मरण की भावना पर चित्त को लगाया जाता है जिससे चित्त में जगत् की अनित्यता का भाव उत्पन्न होता है। कायगतानुस्मृति अशौचभावना के सदृश है। मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा को बौद्ध-दर्शन में ब्रह्मविहार कहा गया है। ये मैत्री आदि ही जैन-साहित्य में मैत्री, करुणा आदि भावना के रूप में विख्यात हैं। आधुनिक चिकित्सा के क्षेत्र में भी अनुप्रेक्षा का बहुत प्रयोग हो रहा है। मानसिक संतुलन बनाये रखने के लिए भी यह बहुत महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। "माइन्ड स्टोर" नामक प्रसिद्ध पुस्तक के लेखक Jack Black ने मानसिक संतुलन एवं मानसिक फिटनेस के प्रोग्राम में इस पद्धति का बहुत प्रयोग किया है, उनकी पूरी पुस्तक ही इस पद्धति पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालती है।

ध्यान के द्वारा ज्ञात सच्चाइयों की व्यावहारिक परिणति अनुप्रेक्षा के प्रयोग से सहजता से हो जाती है। अनुप्रेक्षा, संकल्पशक्ति, स्वभाव-परिवर्तन, आदत-परिवर्तन एवं व्यक्तित्व निर्माण का महत्त्वपूर्ण उपक्रम है। चिकित्सा के क्षेत्र में इसका बहुमूल्य योगदान हो सकता है। अनुप्रेक्षा के माध्यम से आधि, व्याधि एवं उपाधि की चिकित्सा हो सकती है। प्रेक्षा-ध्यान के शिविरों में विभिन्न उद्देश्यों से अनुप्रेक्षों के प्रयोग करवाये जाते हैं। उनका लाभ भी सैकड़ों-सैकड़ों व्यक्तियों ने प्राप्त किया है अतः आज अपेक्षा इसी बात की है कि अनुप्रेक्षा के बहु-आयामी स्वरूप को हृदयंगम करके स्व-पर कल्याण के कार्यक्रम में उसे नियोजित किया जाये।

### सन्दर्भ-स्थल

१. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः, पा.यो.सू. १/२
२. काय-वाङ्-मनो-व्यापारो योगः, जै.सि.दीपिका ४/२५
३. योगविंशिका, श्लो. १

४. अमूर्त्तचिंतन, पृ. १
५. शरीरादीनां स्वभावानुचिंतनमनुप्रेक्षा । सर्वार्थसिद्धि ९/२
६. सुतत्तचिंता अणुपेहा । कार्तिकेयानुप्रेक्षा. श्लो. ९७
७. अनु पुनः पुनः प्रेक्षणं चिंतनं स्मरणनित्यादिस्वरूपाणामित्यनुप्रेक्षा । कार्तिकेय, पृ.१
८. किं पलवियेण बहुणा जे सिद्धा णरवरा गये काले। सिज्झिहहि जे वि भविया तज्जाणह तस्समाहप्पं।। वारस अणुवेक्खा, गा. ९०
९. द्वादशापि सदा चिन्त्या अनुप्रेक्षा महात्ममिः ।  
तद् भावना भवत्येव कर्मणां क्षयकारणम् ॥ पदा.  
पंचविंशतिका, श्लो. ४२
१०. विध्याति कषायानि विगलित रागो विलीयते ध्वान्तम् ।  
उन्मिषति बोधदीपो हृदि पुंसां भावनाभ्यसात् ॥ ज्ञानार्णव,  
या. अ. ११२
११. (क) स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरिषहजयचरित्रैः तत्त्वार्थसूत्र  
९/२  
(ख) गुत्ती सामिदी धम्मो  
अणुवेक्खा.....संवरहेदूविसेसेणा । कार्तिकेयानुप्रेक्षा ९६
१२. (क) संगविजयणिमित्तमणिच्चताणुपेहं आरभते ।  
(ख) धम्मे थिरताणिमित्तं असरणतं चिंतयति ।  
(ग) संसारुव्वेगकरणं संसाराणुपेहा ।  
(घ) संबंधिसंगविजतायएगत्तमणुपेहेति । दशवै. अग. चूर्णि.  
पृ. १८
१३. उत्तराध्ययन २९/२३
१४. तत्त्वार्थराजवार्तिक ९/३६/१३
१५. जं थिरमज्जवसाणं तं ज्ञाणं जं चलं तयं चित्तं ।  
तं होज्ज भावणा वा अणुपेहा वा अहव चिंता।। ध्यान शतक,
- गा. २
१६. ठाणं ५/२२०
१७. सूत्रवदर्थेऽपि संभवति विस्मरमतः सोऽपि परिभावनीय  
इत्यनुप्रेक्षा । उत्तरा शा. वृ., पृ. ५८४
१८. अणुपेहा नाम जो मणसा परियट्टेइ णो वायाए । दशवै. जि.  
चूर्णि, पृ. २९
१९. ठाणं ४/६८, ७२
२०. उवसमेण हणे कोहं माणं मद्दवया सिणे।  
मायं चज्जवभावेण लोहं संतोसओ जिणे । दशवै ८/३८
२१. लोभं अलोभं दुगंछमाणे, लद्धे कामे नाभिगाहइ । आचारांग  
२/३६
२२. प्रतिपक्षभावनोपहताः क्लेशास्तनवो भवन्ति । पात. यो.  
सू. २/१०
२४. जं जं भावं आविसइ.....
२५. कल्याणमंदिर, श्लो. १७
२६. यदा ध्यान-बलाद् ध्याता शून्यीकृत्य स्वविग्रहम् ।  
ध्येयस्वरूपविष्टत्वात्तादृक् सम्पद्यते स्वयम्॥  
तदा तथा विधध्यानसंवित्तिध्वस्तकल्पनः।  
स एव परमात्मा स्याद्वैनतेयश्च मन्मथः॥  
तत्त्वानुशासन, श्लोक १३५-३६
२७. बलेषु हस्तिबलादीनि । पात यो. सू. ३/२४
२८. तद्दिट्ठीए तम्मुत्तीए तप्पुरक्कारे तस्सण्णी तन्निवेसणे । आचारांग  
५/११०
२९. मैत्रीकरूणामुदितेति तिस्रो भावनाः पा.यो.सू.या. ३/२३
३०. अभिद्यम्मत्थ संगहो, ९ वां अध्याय ।
३१. विशुद्धिभग्ग, परिच्छेद ७-८ पृ. १३३-२०० ।